॥ ओ३म् ॥

प्रिय पाठक गण !

मेरे प्रचार करने का ढंग पारिवारिक सत्संग यज्ञ सहित कराने का है। मैं घर-घर हवन यज्ञ, प्रार्थना, भजन कीर्तन वेदोपदेश प्रचार करता हूँ। मेरा विश्वास तथा अनुभव है कि इससे प्रचार अधिक लाभकारी होता है और फलदायक होता है। इस प्रचार को अधिक उपयोगी बनाने के लिये मैंने एक ट्रैक्ट जिसका नाम 'देव-यज्ञ प्रसाद' है, लिखा है। इसमें नित्य कर्म के हवन मन्त्र, सामान्य प्रकरण, स्वस्तिवाचन, शांति प्रकरण, बलिवैश्वदेव, पूर्णमासी और अमावस * मन्त्र तथा प्रार्थनाएँ व भजन लिखे हैं। इस पुस्तक को छपा कर निःशुल्क बांटा करता हूँ। अब यह 'देव-यज्ञ प्रसाद' की छठी आवृत्ति छपवा कर बांटी जा रही है, और मैं जिस घर में पारिवारिक सत्संग कराता हूं, प्रायः उस घर में यजुर्वेद भाष्य मगवा कर रखवाता हूं ताकि नित्य प्रति नैत्यिक कर्म के पश्चात् वेद पाठ हुआ करे और जहां पर यजुर्वेदादि ब्रह्म परायण महायज्ञ करवाता हूं, वहां पर चारों वेद रखवाने का यत्न करता हूं। मेरा प्रचार कार्य प्रातः ६ बजे से ८ बजे तक होता है जो अमृत-समय होता है। उस समय परमात्मा की अमृत दात बंटती है। भाग्यशाली ही अमृत पान करते हैं। अतः जो समाज तथा व्यक्तिगत प्रेमी इस प्रकार से सत्संग कराना चाहें, वे निम्नलिखित पते पर पत्र व्यवहार करें।

मैं जहां 'देव-यज्ञ प्रसाद' छपवा कर मुफ़्त बांटता हूं, मुझे भगवत प्रेरणा हुई कि पांच महायज्ञों को, जिन पर महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने बड़ा बल दिया है, पृथक् पृथक् पुस्तकाकार छपवा दूँ

चुनांचि देव-यज्ञ प्रसाद ५०००, ब्रह्म-यज्ञ प्रसाद ३०००, पितृ-यज्ञ प्रसाद ३०००, अतिथि यज्ञ प्रसाद १०००, भगवद् यज्ञ प्रसाद १०००, ब्रह्म प्रसाद १०००, यज्ञ प्रसाद ४०००, नारी कर्त्तव्य प्रसाद १००० प्रेम, सुमन प्रसाद १०००, मौन यज्ञ प्रसाद २०००, पारिवारिक सत्संग प्रसाद १६००० पुस्तकें छपवा कर बिना दामों के बांटी जा चुकी हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आर्यसमाज को कर्मकाण्ड की बड़ी आवश्यकता है, इसलिये मैं यह प्रयत्न कर रहा हूं कि जागृति हो, घर २ में धारा प्रवाह भक्ति का रस बंटे और आर्य जनता सुख और शांति का साम्राज्य स्थापन करने में अधिकाधिक सहायक सिद्ध हो सके।

मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा यदि आर्य नर नारी इसे अपनाकर जीवन में चरितार्थ करेंगे।

इस 'देव यज्ञ प्रसाद' के पांचवें संस्करण के छपवाने का भार भगवद् प्रेरणा से श्री डा० देवराज जी सूरी M. B. B. S. रोहतक ने उठाया है। प्रभुदेव उनकी धर्म कार्यों में प्रवृत्ति और अधर्म कार्यों से निवृत्ति बनाये रखें और उन्हें आशीर्वाद देवें ताकि इसी प्रकार निष्काम कामों को करते हुये धन धान्य से परिवार सहित उन्नति को प्राप्त हों।

———

छठा संस्करण

पाठक गण !

आपको यह जान कर हर्ष होगा कि इस 'देव यज्ञ प्रसाद' पुस्तक के छठे संस्करण के छपवाने का भार भगवद् प्रेरणा से मेरे प्रेमी श्री डाक्टर देवराज जी सूरी M. B. B. S. रोहतक ने उठाया है। ऐसे शुभ और निष्काम कर्म वर्तमान काल में प्रायः धन के धनी नहीं किया करते, किन्तु हृदय के धनी ही किया करते हैं।

प्रभु की अपार कृपा ही है, कि श्री डाक्टर जी परिवार सहित वेद तथा ऋषि दयानन्द महाराज के आदेश के अनुसार नित्य प्रति नित्य कर्म तथा वेद स्वाध्याय करते हैं। यह भक्ति रसना तथा नम्रता और त्याग भावना का सद्गुण, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव श्री महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी महाराज, वैदिक भक्ति साधन आश्रम की संगति तथा उनके सद्-उपदेशों का ही परिणाम है। आप आश्रम की अनथक सेवा करते हैं। प्रभु देव इनको परिवार सहित सदैव धर्म कार्यों में प्रवृत्ति और अधर्म कार्यों से निवृत्ति बनाये रखें।

पता—
C/o भारत गिलास कम्पनी
सदर बाजार देहली।

भवदीयः—
स्वामी ब्रह्मानन्द

श्रेष्ठतम कर्म तथा उसके लाभ

यज्ञोवै श्रेष्ठतमं कर्म तस्मात् मनुष्येभिर्यो ग्रहः ॥ ५ ॥
शतपथ ब्राह्मण

अर्थात्—यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है, इसलिये सब मनुष्यों को करना चाहिये।

अग्नि होत्रंजुहूयात् स्वर्ग कामः।

अर्थात्—स्वर्ग कामना रखने वाले को अग्नि होत्र करना चाहिये।

प्रहोत्रे पर्वशं वचोग्नये भरता ब्रहत।

विपां ज्योतींषिं विभ्रते न विघसे ॥ सा० मं० ६८ ॥

अर्थात्—यज्ञाग्नि होत्र करने से मेघावी बुद्धि, तेज और भगवत् प्राप्ति होती है।

सामवेद मं० १२४६—अग्नि होत्री कर्मकाण्डी को परमात्मा रक्षा करता है और उसकी वाणी को सुनता है। अर्थात् जैसा २ वह चाहे वैसा २ उसकी उत्तम कामना पूर्ण करता है और उसकी सन्तानों की रक्षा करता है।

सामवेद मं० ८७६—भले प्रकार अग्नि में होम करने से मनुष्य को पुत्र आदि सन्तान, उत्तम बुद्धि, बहुत धन धान्य आदि की प्राप्ति होती है।

ऋषि दयानन्द महाराज सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में लिखते हैं।' आर्यवर शिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे महाराजे लोग बहुत सा होम करते थे। जब तक इस होम के करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो सकता है।

लाभ

विशेष अवसरों पर तो हवन करना ही पड़ता है। नित्य ही चूल्हा, चक्की, बुहारी आदि से होने वाली जीव हिंसा एव पातकों के निवारणार्थ, नित्य मन्त्र यज्ञ करने का विधान है। इन पांचों यज्ञों में एक बलिवैश्व देव यज्ञ भी है। बलिवैश्व अग्नि में आहुति देने से होता है। इस प्रकार शास्त्रों की आज्ञानुसार तो नित्य हवन करना भी हमारे लिये आवश्यक है। त्यौहारों में भी प्रत्येक त्यौहार पर अग्निहोत्र आवश्यक है। होली लोहढ़ी तो यज्ञ के ही त्यौहार हैं आजकल लोग लकड़ी, उपले, जलाकर लोहढ़ी-होली मनाते हैं। शास्त्रों में देखा जाए तो यह यज्ञ है। लोग यज्ञ की आवश्यकता और विधि को तो भूल गये पर केवल ईंधन जलाकर उस प्राचीन परम्परा की किसी प्रकार पूर्ति कर लेते हैं। इसी प्रकार श्रावणी, दशहरा, दिवाली आदि त्यौहारों पर किसी न किसी रूप में हवन अवश्य होता है। नवरात्रियों में स्त्रियां देवी-पूजा करती हैं तो अग्नि मुख में, देवी के निमित्त घी, लौंग, जायफल, आदि अवश्य चढ़ाती हैं। सत्यनारायण व्रत कथा, रामायण पारायण, गीता पाठ, भागवत सप्ताह आदि कोई भी शुभ आयोजन क्यों न हो, हवन उसमें अवश्य किया जाता है।

यज्ञ शिष्टामृत भुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

॥ गीता अ० ४॥

भावार्थ—यज्ञ (दान व देव पूजा) से बचे, अमृत का भोजन करने वाले पुरुष सनातन ब्रह्म को पाते हैं यज्ञ न करने वाले का यह लोक नहीं है—हे कौरवों में श्रेष्ठ ! फिर उसको परलोक कहां होगा !

२–साधनाओं में भी हवन अनिवार्य है। जितने भी पाठ पुरश्चरण जप, साधन किये जाते हैं, वे चाहे वेदोक्त हों, चाहे तान्त्रिक, हवन उनमें किसी न किसी रूपमें अवश्य करना पड़ेगा। गायत्री उपासना में भी हवन अनिवार्य है। अनुष्ठान या पुरश्चरण में जप से दसवां भाग हवन करने का विधान है। परिस्थिति वश दसवां भाग आहुतियां न दी जा सकें तो शतांश (सौवां भाग) आवश्यक है ही। गायत्री को माता और यज्ञ को पिता माना गया है। इन्ही दोनों के संयोग से मनुष्य का आध्यात्मिक जन्म होता है जिसे 'द्विजत्व' कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को द्विज कहते हैं। द्विज का अर्थ है, दूसरा जन्म। जैसे अपने शरीर को जन्म देने वाले माता पिता की सेवा, पूजा करना मनुष्य का नित्यकर्म है, उसी प्रकार गायत्री माता और यज्ञ पिता की पूजा भी प्रत्येक द्विज का आवश्यक धर्म, कर्त्तव्य है।

धर्म ग्रंथों में पग २ पर यज्ञ की महिमा का गान है। वेद में यज्ञ का विषय प्रधान है। क्योंकि यज्ञ एक ऐसा विज्ञानमय विधान है जिससे मनुष्य का भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से कल्याणकारक उत्कर्ष होता है भगवान् यज्ञ से प्रसन्न होते है। कहा गया है :—

यो यज्ञे यज्ञ परैरिज्यते यज्ञ संज्ञितः।
तं यज्ञ पुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम् ॥

जो यज्ञ द्वारा पूजे जाते हैं, यज्ञमय है, यज्ञ रूप हैं, उन यज्ञ रूप विष्णु भगवान को नमस्कार हो।

महाशय कहलाने का अधिकारी कौन है

१—यजुर्वेद अध्याय १८ मं० २२ का, भाष्यकार ऋषि दयानन्द महाराज भाष्य करते हैं:—

भावार्थ—जो प्राणियों के सुख के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं वे महाशय हैं, ऐसा जानना चाहिये।

ओ३म्। उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः।
तद्धिहव्यं मनुषे गा अविन्दद् हन्नहिं पपिवां इन्द्रो अस्य ॥

॥३॥ ऋ० मं ५ सू० २६

भावार्थ—जो मनुष्य सब वेदों को पढ़कर, नहीं खाने और नहीं पीने योग्य वस्तु का वर्ज्जन करके न्यायाधीश के सदृश न्याय और सूर्य के सदृश का प्रकाश करते हैं वे, महाशय होते हैं।

नोट:—महाशय नाम के कहलाने वाले इन दोनों मन्त्रों के आदेशानुसार अपना निरीक्षण करें।

पुत्रार्थी लभते पुत्रान्, धनार्थी लभते धनम्।
भार्यार्थी शोभनां भार्यां कुमारी च शुभम् पतिम् ॥
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यम् श्री कामा श्रियमाप्नुयात्।
यं यं प्रार्थयते कामं सर्वो भवति पुष्कलः ॥
निष्कामः कुरुते यज्ञं स परं ब्रह्म गच्छति।

॥मत्स्य पुराण ९३।११७॥

यज्ञ से पुत्रार्थी को पुत्र लाभ हुआ, धनार्थी को धन लाभ, विवाहार्थी को सुन्दर भार्या, कुमारी को सुन्दर पति, श्री कामना वाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है, और निष्काम भाव से यज्ञानुष्ठान करने से परमात्मा की प्राप्ति होती है।

प्रयो राये निनीषति मर्त्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरन्धत्ते अग्न उक्थशांसिनंत्मना सहस्रपोषिणम्।

॥ वेद० सा० मं० ५८ ॥

भावार्थ—ईश्वर को स्मरण करने और उसको आत्म समर्पण करने वाले याज्ञिक धर्मात्मा के घर में जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वे स्वयं विद्वान्, वेद वक्ता और सहस्रों को पालने पोषने में समर्थ होते है।

न तस्य ग्रह पीड़ा स्यान्नच बन्धु धनक्षयः।
गृह यज्ञं व्रतं गेहे लिखितं यत्र तिष्ठति॥
न तत्र पीड़ा पापानां न रोगो न च बन्धनम्।
अशेषा यज्ञ फलदमशेषा घौरघ नाशनम्॥

॥कोटि होम पद्धति॥

यज्ञ करने वाले को ग्रह पीड़ा, बन्धु नाश, धन क्षय, पाप, रोग, बन्धन आदि की पीड़ा नहीं सहनी पड़ती। यज्ञ का फल अनन्त है।

देवा सन्तोषिता यज्ञैर्लोकान् समवर्धयन्त्युत।
उभयोर्लोकयोः देव भूतिर्यज्ञः प्रदृश्यते।
तस्माद्यज्ञादिवं याति पूर्वजैः सहमोदते।
नास्ति यज्ञं समं दानं नास्ति यज्ञ समो विधिः।
सर्व धर्म समुद्देश्यो देवि यज्ञसमाहितः।

॥महाभारत॥

यज्ञों से संतुष्ट होकर देवता संसार का कल्याण करते हैं। यज्ञ द्वारा लोक और परलोक का सुख प्राप्त होता है। यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यज्ञ के समान कोई दान नहीं, यज्ञ के समान कोई विधि विधान नही, यज्ञ में ही सब धर्मों का उद्देश्य समाया हुआ है।

राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ करके चार पुत्र पाये थे। राजा अश्वपति ने यज्ञ द्वारा सन्तान प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त किया था। इन्द्र ने स्वर्ग भी यज्ञों के द्वारा ही पाया था। भगवान राम

ने अपने यहां अश्वमेध कराया था। श्री कृष्ण जी की प्रेरणा से पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ कराया था; जिसमें श्री कृष्ण जी ने आगन्तुकों के स्वागत सत्कार का भार अपने ऊपर लिया था। पापों के प्रायश्चित्त स्वरूप अनिष्टों और प्रारब्ध जन्य दुर्भाग्यों की शांति के निमित्त, किसी अभाव की पूर्ति के लिये, कोई सुयोग या सौभाग्य प्राप्त करने के प्रयोजन से, रोगनिवारणार्थ, देवताओं को प्रसन्न करने के हेतु, धन-धान्य की अधिक उपज के लिये, अमृतमयी वर्षा के निमित्त, वायुमण्डल में से अस्वास्थ्यकर तत्त्व का उन्मूलन करने के निमित्त, हवन यज्ञ किये जाते थे; और उनका परिणाम भी वैसा ही होता था।

यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः
अयज्वनां तु यद्वित्त मासुरस्वं तदुच्यते ॥२०॥
॥मनु० अ० ११॥

अर्थात्—यज्ञ करने वालों का धन देवताओं का धन होता है और यज्ञ न करने वालों का धन राक्षस का धन कहलाता है।

संसार में कभी किसी वस्तु का नाश नहीं होता। केवल रूपान्तर होता रहता है। जो वस्तु हवन में होम दी जाती हैं वे तथा वेद मन्त्रों की शक्ति के साथ जो सद्भावनाएं यज्ञ द्वारा उत्पन्न की जाती हैं वे दोनों ही मिलकर आकाश में छा जाती हैं। उनका परिणाम समस्त संसार के लिये अनेक प्रकार से कल्याण कारक परिणाम उत्पन्न करने वाला होता है। इस प्रकार यज्ञ संसार की सेवा का, विश्व में सुख शांति उत्पन्न करने का एक उत्तम मध्यम एवं पुण्य परमार्थ है। यज्ञ से याजक की आत्मा शुद्ध होती है, उसके पाप ताप नष्ट होते हैं, तथा शांति एवं सद्गति उपलब्ध होती है। सच्चे हृदय से यज्ञ

करने वाले मनुष्यों का लोक परलोक सुधरता है। यदि उनका पुण्य पर्याप्त हुआ तब तो उन्हें स्वर्ग या मुक्ति की प्राप्ति होती है। अन्यथा यदि दूसरा जन्म भी लेना पड़ा तो सुखी, श्रीमान, साधन सम्पन्न उच्च परिवार में जन्म होता हैं, ताकि आगे के लिये वह सुविधा के साथ सत्कर्म करता हुआ लक्ष्य को सफलता पूर्वक प्राप्त कर सके।

वेद का राजा के प्रति यज्ञ करने को आदेश

ओ३म् दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णो रश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूंषि तारिषत् ॥

॥६॥ ऋ० मं० ४ सू० ३६

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो राजा सुगन्ध आदि से युक्त घृत आदि के होम से वायु वृष्टि जलादि को पवित्र कर सब के रोगों का निवारण करके स्वास्थ्य को बढ़ाता है और प्रयत्न से सब प्रजाओं का पुत्र के सदृश पालन करता है वह हम लोगों को पिता के सदृश सत्कार करने योग्य है।

यज्ञ का अर्थ है दान, संगतिकरण देवपूजा इन भावनाओं एवं मनोवृत्तियों को संसार में बढ़ाने के लिये यज्ञ का आयोजन स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही दृष्टियों से महत्व पूर्ण है। यज्ञ का वेदोक्त आयोजन शक्तिशाली मन्त्रों का विधिवत् उच्चारण, विधिपूर्वक बनाये हुए कुण्ड, समिधाओं सामग्रिओं से जब ठीक विधान पूर्वक हवन किया जाता है तो उसका दिव्य प्रभाव विस्तृत आकाश मण्डल में फैल जाता है। उस प्रभाव के फल स्वरूप प्रजा के अन्तःकरणों में प्रेम एकता, सहयोग सद्भाव, उदारता, ईमानदारी, संयम, सदाचार, आस्तिकता आदि सद्भावों एवं सद्विचारों से आच्छादित दिव्य अध्यात्म वातावरण

के दिनों में सन्तानें पैदा होती हैं, वे भी स्वस्थ, सद्गुणी एवं उच्च-विचार धाराओं से परिपूर्ण होती है। पूर्वकाल में इसी दृष्टि से पुत्रेष्टि यज्ञ किये जाते थे। जिनके सन्तानें नहीं होती, वे ही पुत्रेष्टि यज्ञ कराते हों सो बात नहीं, जिनके बराबर सन्तानें होती थी, वे भी सद्गुणी एवं प्रतिभावान् सन्तान प्राप्त करने के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ कराते थे। गर्भाधान, सीमन्त, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार बालक को जन्म लेते लेते अबोध अवस्था में ही हो जाते थे। इनमें से प्रत्येक में हवन होता था ताकि बालक के मन में दिव्य प्रभाव पड़े और वह बड़ा होने पर पुरुष सिंह एवं महापुरुष बने। प्राचीन काल का इतिहास साक्षी है कि जिन दिनों इस देश में यज्ञ की प्रतिष्ठा थी। उन दिनों यहां महापुरुषों की, नररत्नों की कमी नहीं थी। आज यज्ञ का तिरस्कार करके अनेक दुर्गुणों, रोगों, कुसंस्कारों और बुरी आदतों से ग्रसित बालकों से ही हमारे घर भरे हुए हैं।

यज्ञ से अदृश्य आकाश में जो आध्यात्मिक विद्युत तरंगे फैलती है, वे लोगों के मनों में से द्वेष, पाप, अनीति, वासना, स्वार्थपरता, कुटिलता आदि बुराइयों को हटाती हैं। फलस्वरूप उससे अनेकों समस्याएँ हल होती है। अनेकों उलझने, गुत्थियां, पेचीदगियाँ, चिन्ताएं, भय आशंकाएं तथा बुरी संभावनाएं समूल नष्ट हो जाती हैं। राजा, धनी, सम्पन्न लोग, ऋषि, मुनि, बड़े बड़े यज्ञ कराते थे। जिससे दूर दूर तक का वातावरण निर्मल होता था और देश व्यापी, समाज व्यापी और विश्वव्यापी बुराईयां तथा उलझने सुलझती थी। साधारण गृहस्थ छोटे छोटे हवन कराते थे जिससे उनके घर की कुटुम्ब की, ग्राम की छोटी छोटी समस्याएं हल होती थी। व्यापक सुख, समृद्धि, वर्षा, आरोग्यता, सुख शांति

के लिये बड़े बड़े यज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। पर छोटे छोटे हवन

भी अपनी छोटी सीम और मर्यादा के भीतर अपने लाभों से प्रजा को लाभान्वित करते हैं। जितना खर्च हवन में होता है उससे हज़ारों गुने मूल्य की सुख समृद्धि की प्राप्ति एवं आपत्तियों से निवृत्ति मिलती है। इस तरह किसी भी प्रकार यज्ञ घाटे का सौदा नहीं रहता है।

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति।
स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः ॥२५॥

मनु० अ० ११

भावार्थ—यज्ञार्थ भिक्षा द्वारा धन संचित करके सारा धन यज्ञ में न लगावे तो जन्म पर्यन्त भाष (जुगमू) नामी पक्षी और कौवा होता है।

यज्ञ किसी प्रकार भी घाटे का सौदा नहीं है। साधारण रीति से किये हुए हवन में जो धन व्यय होता है, एक प्रकार से देवताओं के बैंक में जमा हो जाता है और वह सन्तोषजनक व्याज समेत लौट कर अपने को बड़ी महत्वपूर्ण आवश्यकता के समय पर वापिस मिलता है। विधि पूर्वक, शास्त्रीय पद्धति एवं विशिष्ट उपचारों एवं विचारों के साथ किये हुए हवन तो और भी महत्वपूर्ण हैं। ऐसे यज्ञ एक प्रकार के दिव्य अस्त्र हैं। दैवी सहायताएं प्राप्त करने के उपचार हैं। पूर्व काल में यज्ञ द्वारा मनोवांछित वर्षा होती थी। यज्ञ शक्ति से सुसज्जित होकर योद्धा लोग अजेय बनते थे। यज्ञ द्वारा योगी लोग अपनी तपस्या पूर्ण करके आत्म साक्षात्कार करते थे। यज्ञ समस्त ऋद्धि सिद्धियों का पिता हैं। यज्ञ को वेदों ने 'कामधुक्' कहा है, वह मनुष्यों के अभावों का पूरा करने वाला और बाधाओं को दूर करने वाला है।

नित्य प्रति नियम पूर्वक श्रद्धा, सात्विक भावना से यज्ञ करने वाले यजमान को यज्ञ अग्नि भविष्य में आने वाले संकटों से सावधान करती है जिससे वह सावधान होकर आने वाले संकटों को दूर करने

के उपाय करके निजात मुक्ति पा लेता है, यज्ञ करने वाले पर कोई भी शत्रु विजय प्राप्त नहीं कर सकता ! 'होम समये परमात्मा ध्यानम् दर्शयति' अर्थात् होम समय परमात्मा ध्यान दिखाते है।

नियम पूर्वक यज्ञ करने का फल

ओ३म् यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत्। भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः ॥२१॥ ऋग० मं० ८ सू० २३ मं० २१

भावार्थ—जो जन नियम पूर्वक अग्नि होत्रादि कर्म करता है उसको इस लोक में धन, यश, पुत्र और निरोगता प्राप्त होती है

नित्य कर्म (अग्नि होत्र) करने के लाभ

१—प्रजा (सन्तान) द्यौलोक से आती है। वह अमर आत्मा होती हैं और विजय प्राप्त करने वाली होती है।

२—सन्तान का वियोग नहीं होता।

३—स्त्री अपने पति का वियोग नहीं देख सकती।

४—आगामी जन्म में ऋणी नहीं हो सकता। धन धान्य से भरपूर रहता है। किसी के अधीन नहीं होता।

५—उदार, पवित्र, त्याग भाव वाला और अहिंसक होता है। प्राणी मात्र से प्यार करता है।

यदि रोगी अपनी जीवन शक्ति को खो भी चुका है, निराशा जनक स्थिति को पहुँच गया हो, यदि मरणकाल भी समीप आ चुका हो तो भी यज्ञ उसे मृत्यु के चंगुल से बचा लेता है और सौ वर्ष जीवित रहने के लिये पुना बलवान कर देता है।

ओ३म् नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्नेरयिंमघवद्भ्यश्च धेहि।

ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥५॥

ऋग्वेद मं० ६ सू० १० मं० ५

भावार्थ—जैसे हवन करने वाले जन अग्नि में स्रुवा से घृत छोड़ते हैं वैसे विद्वान जन अन्य की बुद्धि में विद्या को छोड़े और जैसे सूर्य के प्रकाश में नेत्र व्याप्त होता है वैसे हवन किया गया द्रव्य अन्तरिक्ष में व्याप्त होता है।

प्रयुक्तया यथा चेष्टया राजयक्ष्मा पुरोजितः ।
तां वेद विहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ॥

चरक चि० खण्ड ८।१२२

तपेदिक सरीखे रोगों को प्राचीन काल में, यज्ञ के प्रयोग से नष्ट किया जाता था रोग मुक्ति की इच्छा रखने वालों को चाहिये कि उस वेद विहित यज्ञ का आश्रय लें।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाऽऽज्यमहमग्निरहंहुतम् ॥ गीता ९।१६

मैं ही ऋतु हूं, मैं ही यज्ञ हूं, मैं ही स्वधा हूं, मैं ही औषधि हूँ, और मन्त्र, घृत, अग्नि और हवन भी मैं ही हूं।

नायं लोकोऽस्त्य यज्ञस्य कुतोन्यः कुरु सत्तम ॥ गीता ४।३१

हे अर्जुन ! यज्ञ रहित मनुष्य को इस लोक में भी सुख नहीं मिल सकता, फिर परलोक का सुख तो होगा ही कैसे।

नास्त्य यज्ञस्य लोको वै ना यज्ञो विन्दते शुभम् ।
अयज्ञो न च पूतात्मा नश्यतिच्छिन्न पर्णवत्—शंख

यज्ञ न करके वाले मनुष्य लौकिक और पारलौकिक सुखों से वंचित हो जाता है। यज्ञ न करने वाले की आत्मा पवित्र नहीं होती और वह पेड़ से टूटे हुए पत्ते की तरह नष्ट हो जाता है।

अग्नि होत्र्य पविध्याग्नीन् ब्राह्मणः काम कारतः ।

चान्द्रायणं चरेन्मासं वीर हत्यासमं हितत् ॥ ४१मनु०अ० १०

भावार्थ—अग्नि होत्री ब्राह्मण इच्छा से सांय प्रातःकाल में अग्नि में हवन न करे तो एक महीना तक चान्द्रायण व्रत करे, क्योंकि अग्नि होत्री को इसका पुत्र हत्या के समान दोष है ।

सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ४ में लिखा है—

आर्य कौन हो सकता है ?

न तिष्ठति तुयः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्

स शूद्र वद्वहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विज कर्मणः । मनु०

अर्थात्—जो मनुष्य सन्ध्या, हवन यह दोनों कार्य सायं प्रातः काल न करे उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देवें । अर्थात् उसे शूद्रवत् जाने ।

ओ३म् कस्त्वाविमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा

विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति । पोषाय रक्षसां भागोऽसि ।

यजु० अ० २ म० २३

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर के करने-कराने व आज्ञा देने के योग्य व्यवहार को छोड़ता है, वह सब सुखों से हीन होकर और दुष्ट मनुष्यों से पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दुःखी रहता है। किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है, उसके लिये क्या होता है। वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उसे छोड़ देता है। फिर वह पूछता है, ईश्वर उसको किस लिये छोड़ देता है ? वह उत्तर देने वाला कहता है कि दुःख भोगने के लिये। जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है, वह सुखों से युक्त होने योग्य है, और जो निज छोड़ता है, वह व्याकुल हो जाता है। २३

देवयज्ञविधि

॥ अथ प्रार्थनामन्त्राः ॥

ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रंतन्न आ सुव ॥ १ ॥ यजु० अ० ३० । मंत्र ३ ॥

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥ यजु० अ० १३ । मं० ४ ॥

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥ यजु० अ० २५ । मं १३ ॥

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥ यजु० अ० २३ । मं० ३ ॥

ओ३म् येन द्यौरुग्रापृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय

हविषा विधेम ॥ ५ ॥ यजु० अ० ३२ । मं० ६ ॥

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ ऋ० म० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ७ ॥ यजु० अ० ३२ । मं० १० ॥

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥ यजु० अ० ४० । मं० १६ ।

अथाग्निहोत्र

जैसे दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासन कर उसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष * अग्निहोत्र भी दोनों समय नित्य किया करें ।

---

* किसी विशेष कारणों से स्त्री वा पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें तो एक स्त्री वा पुरुष दोनों की ओर का कृत्य कर लेवे अर्थात् एक २ मन्त्र को दो २ बार पढ़ के दो २ आहुति करें ॥ (संस्कार विधि गृहस्थाश्रम ।)

॥ ओ३म् ॥

प्रार्थना

हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त, शुद्ध स्वरूप, सर्व सुखों के दाता परमेश्वर सकल दुःख हरता, विघ्न विनाशक सर्व सुखों के भण्डार प्रभो ! हम तेरे अबोध बालक; बालिकएं तेरे द्वार पर आये हुए तेरा कोटानुकोटि धन्यवाद गाते हुए तुझे बारम्बार प्रेम भरा नमस्कार करते हैं।

हे दयानिधे, तेरी दया बेअन्त, तेरी कृपा महती है, हे नाथ ! तू अपनी अपार कृपा से जिसको अपनाता है, हे सविता देव ! आप गुप्त रूप से अपने प्यारों के हृदयों में प्रेरणा करके अपने चरणों का वास देकर कृत्य कृत्य करते हो । हे दयालु कृपालु प्रतिपालक स्वामिन् आप धन्य हो, जो हमें गाढ़ निद्रा से जागृत करके ऐसे सुन्दर, सुहावने, समय जबकि तेरी अमृत वर्षा हो रही है, जीवनों का आप अपने चरणों का वास देकर हमारे जीवनों का उत्थान और कल्याण चाहते हो । हे दीन बन्धु ! हमें सदैव इसी प्रकार तेरी पूजा का अधिकार रहे, अधिकार के साथ हम सब में सामर्थ और स्वतन्त्रता हो पूर्ण श्रद्धा, अटल अटूट विश्वास, और ऐसी हम सबके हृदयों में तेरे प्रतिउत्कट इच्छा बनी रहे कि चाहे हम दुःख में हों, अथवा सुख में, देश में हों, अथवा विदेश में, कोई कैसा भी हाल और काल क्यों न हों, हम सदैव तेरा पूजन करते रहें और कभी भी तेरे नाम से विमुख और वञ्चित न हों, तेरे नाम का दान जो सबसे उत्तम और महान है वह तेरा नाम रूपी धन सदैव हमें मिलता रहे; हमारा स्वास स्वास तेरे नाम की माला

बन जावे और क्षण क्षण में हम तेरी सत्ता का भान करते रहें और सदा ही तुझे केवल मात्र जपते भजते और नमते रहें। हे दयालु पिता वर्तमान काल में संसार भर की चारों दिशाओं में अशान्ति, कोलाहल ईर्षा द्वेष, वैमनस्य, स्वार्थ और राक्षस वृत्ति ने शासन जमाकर देश को पीड़ित कर रखा है; प्रत्येक मनुष्य त्राहिमाम् कर रहा है, निस्संदेह यह सब हमारे मन्द कर्मों का ही परिणाम है। पर हे नाथ ! अब हम अज़माये जाने के काबिल नहीं; परीक्षा देने के योग्य नहीं; हे दुखियों के दुःखों को सुननेवाले दुःख विनाशक प्रभू ! अब बिना तेरे आवाहन किये किसे पुकारें; तुझ बिन अब हमारा कोई आसरा-सहारा नहीं हम मांगते हैं तेरा फ़ज़ल, तेरा तरस, आओ नाथ बिगड़ी बनाओ; हमारे हृदयों को शुद्ध और पवित्र करो, हममें परस्पर प्रेम प्रीति, श्रद्धा भाव उत्पन्न करो और हम एक दूसरे से सहानुभूति करते हुए अपने जीवन को सफल बनावें, जिससे संसार भर में फिर से राम राज्य स्थापित हो और घर घर में मातृ-भक्ति पितृ-भक्ति; गुरु-भक्ति; देश-भक्ति; प्रत्येक मनुष्य मात्र में उत्पन्न हो जावे; अन्त में यही प्रार्थना है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत् ॥

सबका भला करो भगवान्; सब पर दया करो भगवान।
सब पर कृपा करो भगवान सबका सब विधि हो कल्यान ॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

—ब्रह्मानन्द

अथ स्वस्तिवाचनम्

ओ३म् अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने
सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥
स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्तिदेव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३॥
स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥
विश्वेदेवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥
स्वस्ति मित्रा वरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥
स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥७॥
ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥
येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदास्वस्तये॥९॥
नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसतेस्वस्तये ॥१०॥
सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिहृवृता दधिरेदिविक्षयम् ।

तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये॥११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन।

कोवोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नःपर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः।

त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नःकर्तःसुपथास्वस्तये ॥१३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।

ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ १४ ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।

अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।

दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥

विश्वेयजत्रा अधिवोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।

सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।

आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।

यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हि ते धने।

प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२०॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।

स्वस्ति न, पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ २१ ॥

स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्स्यभि या वाममेति।

सा नो अमासो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ॥२२॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशँसो ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात् वह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥

आ नो भद्राः क्रतवोयन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥२४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानाँ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसाम सद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥२९॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषांहितः। देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥

॥ इतिस्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्ति प्रकरणम्

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न, इन्द्रा वरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥
शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शंनः पुरन्धिः शमु सन्तुरायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२
शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं नउरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शंनो अद्रिः शंनो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥
शंनो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विनाशम् ।
शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥
शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शन्न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शन्नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥
शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शंनो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः श नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥
शन्नः सोमो भवतु ब्रह्म शंनः शन्नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शन्नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥
शन्नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शंनः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥
शंनो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शंनो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शंनो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शंनो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९
शंनो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शंनः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शंनो दिव्याः पार्थिवः शंन्नो अप्याः ११
शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शंनो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं नः ऋभवः सकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥
शं नो अज एकपाद् देवोऽस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥ १३ ॥
इन्द्रो विश्वस्य राजति ।
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥
शं न्नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥१५॥
अहानि शं भवन्तु नः शँ रात्रीः प्रतिधीयताम् ।
शं न इन्द्राग्नी भवतां भवाभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमासुविताय शं योः ।१६॥
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥१७॥
द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिःपृथिवीशान्तिरापःशान्तिरोषधयःशान्ति ।
वनस्पतयः । शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥१७॥
तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँशृणुयाम शरदः शतं
प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाःस्याम शरदःशतंभूयश्च शरदःशतात्॥१८

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२०॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञेकृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२३॥

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२४॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२५॥

स नः पवस्व शंगवे शंजनाय शमर्वते । शंराजन्नोषधीभ्यः ॥२६

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोयः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशाः मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥

॥ इति शांति प्रकरणम ॥

जब यज्ञ करने को बैठें तब इन मंत्रों से तीन आचमन करें। अर्थात एक २ से एक २ बार आचमन करें, वे मंत्र यह हैं:—

आचमन मंत्र

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥ इससे एक

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ इससे दूसरा

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

तैत्तिरीय आरण्यक प्र० १० । अनु० ३२, ३५

इससे तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् जल लेकर नीचे लिखे मंत्रों से अंगों को स्पर्श करें।

अंगस्पर्शमन्त्र

ओं वाङ्म आस्येऽस्तु ॥ इस मन्त्र से मुख,

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छेद

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आंखें,

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु॥ इससे दोनों कान

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ मन्त्र से दोनों बाहु,

ओं ऊर्वोर्मऽओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा और

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

पारस्कर गृ० का० १ कण्डिका ३ सू० २५ ॥ इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करें। तत्पश्चात् समिदाधान वेदी में करें पुनः

॥ अग्न्याधानमन्त्र ॥

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ गोभिल गृ० प्र० १ । सू० ?

इस का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उससे ❀कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर कर उसमें छोटी छोटी लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों में उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से आधान करे। वह मन्त्र यह है—

ओ भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ ॥१॥ यजु० अ० ३ ॥ म० ५ ॥

इस मंत्र से वेदी के बीच में अग्नि धर उस पर छोटे छोटे काष्ठ और कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ कर व्यजन (पंखे) से अग्नि को प्रदीप्त करे।

॥ अग्नि प्रदीप्त करने का मन्त्र ॥

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सँसृजेथामयंच। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत। यजु० अ० १५। म० १४॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे, तब चंदन अथवा पलाशादि की तीन लकड़ी आठ आठ अंगुल की; घी में डुबो उन में से नीचे लिखे मंत्रों से एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें। मंत्र ये है—

समिधाधान मंत्र

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥२॥

इससे पहली समिधा अग्नि में चढ़ावें।

❀शुद्ध देशी कपूर होना चाहिये।

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन, स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ यजु० अ० ३ । म० १ ।

इससे और

ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥२॥

इस मन्त्र से अर्थात दोनों मन्त्रों से दूसरी

ओ३म् तन्त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचाय विष्ठ्य, स्वाहा । इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम ॥३॥ य०अ०३।म०२

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें ।

इन मन्त्रों से समिधाधान करके नीचे लिखे मन्त्रों से पांच घृत की आहुतियां देनी ॥

॥ घृताहुतिमन्त्र ॥

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥१॥

॥जल प्रसेचनमन्त्र॥

तत्पश्चात् अंजलि में जल लेके वेदी के पूर्व दिशा आदि चारों ओर छिड़कावे, इसके यह मन्त्र हैं—

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ इस मन्त्र से पूर्व में

ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इससे पश्चिम में

ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इससे उत्तर में और

गोभिलगृ० अ० १ ख० ३ । सू० १-३ ॥

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गंधर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचंनः स्वदतु॥

यजु० अ० ३०। म०१

इस मन्त्र से चारों ओर जल छिड़कावे।

॥ आघाराज्यहुतिमन्त्र॥

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर में अग्नि में

ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम।

गो० गृ० प्र० १। ख ८। सू० २४॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधाओं पर आहुति देनी, तत्पश्चात्।

॥आज्यभागाहुतिमन्त्र॥

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्नमम॥

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्न मम॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी।

॥प्रातः काल आहुति के मन्त्र॥

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥१॥

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥२॥

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥३॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या।
जुषाणः सूर्योवेतु स्वाहा॥४॥

ये नीचे लिखे मन्त्र दोनों समय बोलने के हैं, यदि एक ही समय करे तो एक ही समय सब बोल लें॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम ॥१॥
ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदं वायवेऽपानाय इदंनमम ॥२॥

ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम ॥३॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ॥४॥

ओ३म् आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥
ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु । स्वाहा ॥६॥ यजु० अ० ३२ म० १४

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानिपरासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव । स्वाहा ॥७॥ यजु० अ० ३० म० ३॥

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वावि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम । स्वाहा ॥८॥यजु० ४० । अ० ३ ॥

॥ सायं आहुति के मन्त्र ॥

अब नीचे लिखे हुए मन्त्र सायंकाल के अग्नि होत्र के जानो

ओ३म् अग्निर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥

ओ३म् अग्निर्वर्चोज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥

इस तीसरे मन्त्र को मन से उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी चाहिए।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥ ॥यजु० अ० ३। मं० १०॥

दोनों काल के मन्त्र

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः सायं आहुति देनी चाहिये—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम ॥१॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम॥१॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय इदन्नमम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणपानव्यानेभ्यः इदं न मम ॥४॥

ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ यजु० अ० ३२ मं० १४।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रंतन्न आसुव ॥७॥ यजु० अ० ३०। मं १४॥

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि

देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥८॥ यजु० अ० ४०। म० १६॥

इन आठ मन्त्रों से एक एक मन्त्र करके एक एक आहुति ऐसे आठ आहुति देवें ॥

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियोयोनः प्रचोदयात् स्वाहा ॥९॥

अथ स्विष्टकृताहुति मन्त्र

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्नमम।

॥ अथ प्राजापत्याहुति मन्त्र ॥

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम।

ओ३म् सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा ॥ तीन बार बोले।

इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक एक बार पढ़ के एक २ करके तीन आहुतियाँ देवें।

॥इत्यग्निहोत्र विधिः संक्षेपतः समाप्तः॥

———

अथ सामान्य प्रकरणम्

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम।

ओ३म् भुववायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमदित्याय इदन्न मम ॥
ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम ॥

। अथ आज्याहुति मन्त्रः ।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूँषि पवस आसुवोर्जमिषंचनः।
आरेबाधस्वदुच्छुनां स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्नमम ॥१॥
ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्नमम ॥२॥
ओं भूर्भुवः स्वः अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।
दधद्रयिं मयिपोषं स्वाहा। इदमग्नयेपवमानाय इदन्न मम ॥३॥
ओं भूर्भुवः स्वः प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता
बभूव। यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्
स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥४॥

। अथाष्टाज्य हुति मन्त्रः ।

ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमःशोशुचानो विश्वाद्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा।
इदमग्नी वरुणाभ्यां इदन्न मम ॥१॥
ओं स त्वन्नोऽग्नेऽवमोभवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव
यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा।
इदमग्नीवरुणाभ्यां इदन्न मम ॥२॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्या च मृडय। त्वामवस्यु राचक्रे स्वाहा। इदं वरुणाय इदन्न मम ॥३॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः अहेडमानो वरुणेहबोध्युरुशंसमा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा। इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः॥ तेभिर्नोऽअद्यसवितोत विष्णु र्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्न मम ॥५॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजँ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे इदन्न मम ॥६॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथाव-यमादित्य व्रते तवानागसो अदितयेस्याम स्वाहा॥ इदंवरुणाया-ऽऽदित्यायादितये च इदन्न मम ॥७॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ मा यज्ञँ हिँसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदो भ्यां-इदन्न मम ॥८॥

। अथ बलिवैश्वदेवयज्ञमन्त्राः ।

ओ३म् अग्नये स्वाहा ॥१॥ ओ३म् सोमाय स्वाहा ॥२॥

ओ३म् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥३॥ ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥ ओं३म् धन्वन्तरये स्वाहा ॥५॥ ओ३म् कुहै स्वाहा ओ३म् अनुमत्यै स्वाहा ।७। ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ।८। ओ३म् द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥६॥ ओ३म् स्विष्टकृते स्वाहा ॥१०॥

इन दस मंत्रों से घृतमिश्रित भात की यदि भात न बना हो तो क्षार लवण अन्न को छोड़ कर जो कुछ पाक में बना हो उसकी दस आहुतियां करें ।

पक्षयज्ञ अर्थात् पौर्णमासी तथा अमावस्या मंत्र

। पौर्णमासी मंत्रः ।

ओं३म् अग्नये स्वाहा । ओ३म् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओ३म् विष्णवे स्वाहा ॥

। व्याहृति मंत्रः ।

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदं न मम ॥

ओं भुववायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदं न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय इदं न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदं न मम ॥

अमावस्या मंत्रः

ओं अग्नये स्वाहा ॥ ओं इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥ ओं विष्णवे स्वाहा ॥

व्याहृति मंत्र

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदं न मम ॥

ओं भुववायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदं न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय इदं न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदं न मम ॥

विशेष यज्ञों के लिये

अथ अमावस्यमंत्राः अ० क० ७ सू० ६

ओ३म् यत्ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेनानो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥१॥
ओ३म् अहमेवास्म्यमावस्यामामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे ॥२॥
ओ३म् आगन् रात्रिसंगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती
अमावस्यायै हविषां विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ॥३॥
ओ३म् अमावस्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥४॥

अथ पौर्णमासी मंत्र अ० का० सू० ८०

ओ३म् पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥१॥
ओ३म् वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे ।
स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् ॥२॥
ओ३म् प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तुवयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥३॥
ओ३म् पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।

ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्तयमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ॥४॥

ओ३म्

अथ ब्रह्मपारायण महायज्ञ पद्धति

१—यज्ञारम्भे यजमान कर्तृक दीक्षा ग्रहणं।

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥ यजुर्वेद अ० १ मं० ५॥

१—(ख) दीप प्रज्वालनम्

ओ३म् जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिंधु दुरितान्यग्निः॥ ॥ऋ० मं० १ सू० ९९ मं०१॥

—ऋत्विग् वरणम्—

२—ब्रह्मा—ब्रह्मवरणम् (दक्षिण)

ओ३म् त्वामद्य ऋष आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्यः आसंगतेभ्य एव मे देवेषु वसु वार्या यक्ष्यत इति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्मा आ च शास्त्राच गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्त वाकाय सूक्ता ब्रूहि॥यजु० अ० २१ मं० ६१॥

(ख) होतृवरणम् (आसन पश्चिम की ओर)

ओ३म् वयं हि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारम-
वृणीमहीह । ऋधगया ऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन्यज्ञमुपयाहि
विद्वान्त्स्वाहा ।।यजु० अ० ८ मं० २० ।।

(ग) उद्‌गाता—ऋत्विग्वरणम् (पूर्व आसन पश्चिम मुख)

ओ३म् देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित । मन-
सस्पत इमन्देव यज्ञं स्वाहा वातेधाः ।।यजु० अ०८ मं०२१।।

(घ) अध्वर्यु ऋत्विगासादनम् (उत्तर दिशा दक्षिण मुख)

ओ३म् सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं
सुकृतस्य योनौ । देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्‌यजमाने
वयोधाः ।। यजु० अ० ११। ३५ ।।

ऋत्विक्कर्तृक प्रार्थना

सब मिल कर बोलें

६-ओ३म् यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत् पृथिव्यां यदु-
रावन्तरिक्षे । तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः ।
।। यजु० अ० ६ मं० ३३ ।।

७-ओ३म् मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं ।
तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमन्दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो३
म्प्रतिष्ठ ।। यजु० अ० २ मं० १३ ।।

ऋत्विग्यजमानोभयकर्तृक प्रार्थना

८—ओ३म् अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियं सा

मयि या मम तनूरेषा सा त्वयि। सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षाम् दीक्षापतिर्मन्यता मनु तपस्तपस्पति ॥

॥ यजु० अ० ५ मं० ६ ॥

६—ओ३म् धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मादेवो बृहस्पतिः। सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥

॥यजु० अ० १८ मं० ७६॥

पुनः यजमान प्रार्थना

१०—ओ३म् स्वाहा यज्ञम्मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् स्वाहा। द्यावा पृथिवीभ्याम् स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥

॥यजु० अ० ४ मं० ६॥

यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा

७—ओ३म् ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषंगिणः। तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि ॥ यजु. अ. १६ मं.६१

यज्ञोपवीत देना

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

ओ३म् यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

६—आचमन

१०—ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासनाः।

११—प्रार्थना ब्रह्मा करावे।

१२—स्वस्तिवाचन शान्ति प्रकरणम्।

१३—उत्थानम्।

ओ३म् उदुतिष्ठ स्वध्वरावानो देव्याधिया । दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥

॥ यजु० अ० ११ मं० ४१ ॥

आगे यज्ञ की कार्रवाई आरम्भ हो ।

पूर्णाहुति की क्रिया

यजमान कर्तृक प्रार्थना

ओं अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि । इद महं य एवास्मि सो ऽस्मि ॥ यजु० अ० २ मं० २८ ॥

ऋत्विक्कर्तृक प्रार्थना

१—ओ३म् यज्ञ यज्ञङ्गच्छ यज्ञपतिङ्गच्छ स्वांयोनिङ्गच्छ स्वाहा । एष ते यज्ञो यज्ञपते सह सूक्तवाकः सर्ववीरस्तञ्जुषस्व स्वाहा ॥ यजु० अ० ८ मं० २२ ॥

ऋत्विग्यजमानोभय कर्तृक प्रार्थना

२—ओ३म् अग्ने व्रतपास्ते व्रतपा या तव तनूर्मय्य भूदेषासा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्य भूदियꣳ सा मयि । यथा यथनौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान्दीक्षापतिरमंस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥ यजु० अ० ५ मं० ४० ॥

ओ३म् इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः । तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः ॥ यजु० १८० मं० ५६ ।

ओ३म् येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ यजु० १८।६२ ॥

ओ३म् प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ य० अ० १८ मं० ६३

ओ३म् यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणाः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नोदधत् ॥ य० अ० १८ मं० ६४

ओ३म् यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः । तदग्नि वैश्वकर्मणः स्वर्देषु नो दधत् ॥ ६५॥ य० अ० १८ मं० ६५

नारियलकीआहुति

ओ३म् यदाकूतात्सम सुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा । तदनुप्रेतसुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ यजु० १८ म० ५८

फल की आहुति

ओ३म् काले वर्षतु पर्जन्यः पृथ्वी शस्य शालिनी । देशोऽयं क्षोभ रहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥

पूर्णाहुति

ओ३म् पूर्णात् पूर्ण मुदचति पूर्णं पूर्णौं न सिच्यते । उतो तदस्थ विद्याम् यतस्तत् परिषिच्यते ॥

अथ० का० १० सू० ८० मं० २६

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ अथ० का० ३ । २६ मं० १

ऋत्विक्कर्तृक यजमानाशीर्वाद

(आशीर्वाद मन्त्र)

ओ३म् धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥ य० अ० १८ मं० ७६

ओ३म् ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। घृतेन द्यावा पृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्यछाया ॥ य० अ० ५ मं० २८

ओ३म् आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वा नाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां। निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

य० अ० २२ मं० २२

प्रदक्षिणा

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

॥य० २५ मं० २१ ॥

(२) ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ यजुर्वेद अ०२५मं०१६॥ —आरती—शान्तिपाठ

लोहड़ी (माघी) के त्यौहार और सुख शान्ति तथा
वृष्टि अर्थ निम्नमन्त्रों से यज्ञ करना चाहिये—

१ ओं शन्नो वातः पवताꣳ शन्नस्तपतु सूर्यः।
शन्नः कनिक्रदद्देवाः पर्जन्योअभि वर्षतु ॥

२ ओं समुत्पतन्तु प्रदिशो न भवस्वतीः समभ्राणि वात जूतानि यंतु मह ऋषभस्यनदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवींतर्पयंतु।

अथ० कां० ४ सू० १५ मं० १

॥ ओ३म् ॥

प्रार्थना

हे सत् चित आनन्द स्वरूप परमात्मा, आप ही सारी सृष्टि के उत्पत्ति स्थिति प्रलय करने वाले सर्व शक्तिमान हो। आप सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वपरिपूर्ण सर्वजगन्नियन्ता हो, आपने मंगलकारी, मंगलस्वरूप, मंगल वर्षा करने वाले हो. आप तेजोमय, प्रकाश स्वरूप हो। नाथ ! हम तेरे अल्पज्ञ बालक (बालिकाएं) किस हृदय किस वाणी से तेरी स्तुति, तेरी महिमा का वर्णन करें असमर्थ हैं। हे दयालु पिता, हम तेरे द्वार पर आये हुए, जो कुछ शुभ कर्म यज्ञ, जप आदि कर पाये हैं तेरी कृपा और दयालुता से ही कर पाये हैं; इसमें हमारा अपना कुछ भी नहीं तुच्छ भी नहीं हम स्वयं कुछ भी नहीं, तुच्छ भी नहीं, कृपया इसे स्वीकार करो, हम तेरी दात को तेरा समझते हुए तेरे अर्पण करने में सदैव उदार रहें और हमें इसी प्रकार सदैव शुभ मार्ग पर लगाये रक्खो—

ओ३म् यां मेधां देव गणाः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा। य० अ० ३२ मं० १३

नाथ ! हम सबको मेधा बुद्धि प्रदान करो, जो मेधा आपने हमारे पूर्वजों, ऋषियों, मुनियों, को तूने प्रदान की, जिसके द्वारा उन महान् पवित्र, आत्माओं ने तुझे पहचाना तुझे जाना, अपने आप को तेरे समर्पण करते हुए, आनन्द मोक्ष पद पाया, निःसन्देह हम अयोग्य हैं पर आप अयोग्यों को योग्य बनाने वाले तथा अपनी शरणागत को कभी न त्यागने वाले हो, अतः आप अपने पतित पावन नाम के नाते हम पतितों का उद्धार सुधार संवार करो, हम अयोग्यों को योग्य बनाओ, मेधा बुद्धि प्रदान करो, जिसके द्वारा हम इस मनुष्य जीवन

के उद्देश्य को जानें, उस पर आचरण करते हुए आनन्द मोक्ष पद प्राप्त करें, और हमारे मनों के अन्दर सदैव शिवसंकल्प, शुभ विचार, शुभ भावनाएँ, उत्पन्न होती रहें, जिससे हमारी प्रत्येक ज्ञान और कर्म इन्द्रियें, सन्मार्ग पर चलती रहें और हम किसी भी प्राणी मात्र के प्रति मन, वचन, कर्म द्वारा ईर्ष्या द्वेष न रखते हुए, किंतु दूसरों के हित, दूसरों के कल्याण, दूसरों की भलाई के निमित्त अपने आपको समर्पण करें, और हम सब का जीवन निष्काम यज्ञमय जीवन हो. निःस्वार्थी परमार्थी पुरुषार्थी, सत्यवादी, सदाचारी, परोपकारी, और निष्कलंक ज़ीवन हो, और नाना प्रकार के संकट और विपत्तियों के आ जाने पर धर्म पथ का कभी त्याग न करें. जो कुछ माँगे, तुझ से माँगे; तुझे पायें, तुझे ध्यायें तेरे अटल अटूट विश्वासी बन कर रहें, और सदैव तेरे किये कामों पर सन्तुष्ट रहें। अन्त में तेरे चरणों में यह प्रार्थना है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः; सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु; मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्।

सब का भला करो भगवान्, सब पर दया करो भगवान,
सब पर कृपा करो भगवान्, सब का सब विधि हो कल्याण,
यही याचना है स्वीकार करो, सब प्राणी मात्रका बेड़ा पार करो।

ओं शांतिः ! शांतिः !! शांति !!!

—ब्रह्मानन्द स्वामी

॥ ओ३म् ॥

यज्ञ-भावना

यज्ञ समाप्ति के पश्चात् मिल कर बोलें

ओं आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढा ऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां । निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

यजुर्वेद अध्याय २२ मन्त्र २२

हे जगदीश दयालु ब्रह्म, प्रभु सुनिये विनय हमारी
हों ब्राह्मण उत्पन्न देश में, कर्म धर्म व्रत धारी
क्षत्री हों रणधीर महारथी, धनुर्वेद अधिकारी
धेनु दूध वाली हों सुन्दर, वृषभ तुंग बलिधारी

हों तुरंग गति चपल अंगना, हों सरूप गुणवाली
विजयी रथी पुत्रजनपद के; रत्न तेज बलशाली

जबही जब जग करे कामना, जलधर जल बरसावें
फलें पकें बहु सुखद वनस्पति, योगक्षेम सब पावें

विश्व कल्याण प्रार्थना

भजन नं० १

सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा हम सब की, भगवन पूरी होय॥

विद्या बुद्धि तेज बल, सब के भीतर होय।
दूध पूत धन धान्य से, वञ्चित रहे न कोय॥

आपकी भक्ति प्रेम से, मन होय भरपूर।
राग द्वेष से चित्त हमारा, कोसों भागे दूर॥

मिले भरोसा नाम का, हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे धाम की, बनी रहे मम ईश॥

पाप से हमें बचाइये, करके दया दयाल।
अपना भक्त बनाय कर, सबको करो निहाल॥

दिल में दया उदारता, मन में प्रेम प्यार।
हृदय में धैर्य वीरता, सब को दो कर्तार॥

नारायण तुम आप हो, पाप के मोचन हार।
क्षमा करो अपराध सब, कर दो भव से पार॥

हाथ जोड़ बिनती करूँ, सुनिये कृपा निधान।
साधु संगत सुख दीजिये, दया नम्रता दान॥

भजन नं० २

प्रभु मेरा जिस दिल में मेहमान होगा।
बड़ा भाग्यशाली वह इन्सान होगा॥
जहां प्यारे ईश्वर का गुन गान होगा।
वहां शान्ति सुख का सामान होगा॥२॥
लगन दिल में दर्शन की पैदा तो करलो।

उपस्थित स्वयं आके भगवान होगा॥३॥

इस आजिज को दासों के दासों में रखलो।
मेरा मान स्वामी का अहसान होगा।४।।

भजन नं० ३

हे जगत स्वामी प्रभु जी भेंट धरूँ क्या मैं तेरी!
माल नहीं मोरे सम्पति नाहीं, जिसको कहुँ मैं मेरी।
इस जग में हम ऐसे विचरें, जोगी करे जो फेरी ।।१।। प्रभु जी…
धन जन जोबन अपना माने, मूरख भूला भारी।
तुम बिन और सहाई न मेरा, देख लिया मैं विचारी ।।२।। प्रभु जी…
यह तन, यह मन, होवे न अपना, है सब माल तुम्हारा।
जब चाहे तब ही तू लेवे, नहीं कुछ जोर हमारा ।।३।। प्रभु जी…
तुमरे दर का मैं कूकर स्वामी, लाज रखो प्रभु मेरी।
चरण शरण निज अर्पण करके, देवो भक्ति बिन देरी ।।४।।
प्रभु जी भेंट करूं क्या मैं तेरी !!

यज्ञ पुरुष महिमा भजन नं० ४

यज्ञ रूप प्रभु हमारे, भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देंवे छल कपट को, मानसिक बल दीजिए।।
वेद की बोलें ऋचाएं, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक सागर से तरें।।
अश्वमेधादिक रचाएं, यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चला कर, लाभ दें संसार को।।
नित्य श्रद्धा भक्ति से, यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के, सताप सब हरते रहें।।
कामना मिट जाय मन से, पाप अत्याचार की।
भावनाएं पूर्ण होवें, यज्ञ से नर-नार की।।
लाभकारी हों हवन, हर जीव धारी के लिये।

वायु जल सर्वत्र हों, शुभ गन्ध को धारण किये।।

स्वार्थ भाव मिटे हमारा, प्रेम पथ विस्तार हो।
'इदन्न मम' का सार्थक, प्रत्येक में व्यवहार हो॥
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक, बन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणा रूप करुणा, आपकी सब पर रहे॥

भजन नं० ५

नाथ मन मन्दिर में मेरे. आप अब तो आइये
यह पड़ा सूना इसे, आकर प्रभु अपनाइये
लग रही कब से लगन, अब तो अनुग्रह कीजिये
कीजिए करुणेश करुणा, क्लेश सब हर लीजिये
आप अशरण के शरण, हम हैं शरण में आपकी
मार्ग शुभ दिखलाइए, हम राह छोड़ें पाप की
श्रीराम और श्रीकृष्ण सा, हम में रुधिर फिर से बहे
उन्हीं सरीखे वीर हम में, से प्रभु अपनाइये
भक्त वत्सल आप हैं, अब और न भटकाइये
पुत्र हैं निज गोद में, अब तो पिता बिठलाइये

भजन नं० ६

तेरी शरण में आय के, फिर आस किस की कीजिए
फिर आस किसकी कीजिये. प्रभु आस किसकी कीजिए
नहीं दीख पड़ता है मुझे दुनिया में तेरी शान का
गंगा किनारे बैठ कर, किस कूप का जल पीजिए
हरगिज़ नहीं लायक हूं मैं गरचे तेरे दरबार का
मेरी ख़ता को माफ कर, दीदार अपना दीजिए
पतित पावन नाम सुन कर, मैं शरण तेरी पड़ा
सफल कर इस नाम को, अपना मुझे कर लीजिए
मिलता है 'ब्रह्मानन्द' जिस का नाम लेने से सही

ऐसे प्रभु को छोड़ कर, फिर कौन से हित कीजिए

(दूसरे टाइटल का शेष)

यज्ञ के समय या यज्ञ मण्डप के निकट आते जाते समय जूते का प्रयोग न होगा, खड़ाऊं पहन कर आवें, या नंगे पैर धो कर दर्शकों को यज्ञशाला में आना चाहिये। दर्शकों को यज्ञ मण्डप में आते समय हाथ मुंह धोकर आना होगा और कोई चमड़े वाली वस्तु घड़ी की चैन, बटुआ, गैटिस, सिगरेट आदि यज्ञ मण्डप में अपने साथ न लावेंगे, न पीवेंगे।

२ यज्ञशेष को मण्डप से बाहर खाना होगा, मण्डप की शुद्धताई और पवित्रता को विशेष रूप से स्थिर रखना होगा।

३ आहुति देने वाली स्त्रियों को उचित है कि शास्त्रोक्त मर्यादा के अनुसार और पूर्वजों की सभ्यता के अनुकूल सिरकी सीधी मांग निकाल कर और सादा लिबास पहन कर आवें। चीर टेढ़ी आदि नहीं रखनी होगी और पश्चिमी फेशन से परहेज होगा।

१४ जिन स्त्रियों को यज्ञ के दिनों में रजोदर्शन की सम्भावना होवे वह यजमान न बनें।

१५ कोई स्त्री रजोदर्शन के दिनों में यज्ञ मण्डप में न आवे और जिस देवी का बालक ४० दिनों से कम आयु का हो वह भी आहुति न देवे।

१६ यज्ञ मण्डप का कोई बर्तन खाने पीने के लिये प्रयोग न किया जावे।

१७ यज्ञ की किसी वस्तु को यज्ञ कार्य के बिना अन्य किसी काम में न लाया जावे, जैसे यज्ञ की अग्नि पर कोई चीज न रखनी चाहिये यज्ञ के दीपक को पढ़ने के काम में न लाया जावे, यज्ञ के घड़ों में से पानी न पिया जावे और पंखा झाड़ू आदि को भोजनशाला आदि के कार्य में न लाया जावे।

१८ यज्ञशाला में किसी को सोना नहीं चाहिये। प्रत्येक व्रती को आसन, आचमन पात्र, यज्ञ पात्र, खड़ाऊं अपने अपने साथ रखना चाहिये।

बृहद्यज्ञ की वस्तु

घड़े ४ नारियल ४; लोटा १, झाड़ू १, चिमटा १ हुल्ला अँगीठी १, सुरवेर; नलकी १, कुण्ड का ढकना १ घण्टो ४; शंख १, घड़ियाल १, स्लेट पैंसिल १, घो के बर्तन २; सामग्री के पात्र छलनी (परून) १, तारें ४ चन्दला लाल रंग का; चौकियां ४, आसन ४; दीपक लैम्प रखने के लिये १, दियासलाई १, थाली १; रूई बत्ती के वास्ते, चन्दन की समिधा आठ अंगुल, चन्दन का टुकड़ा (उर्सी) चकलिया १ यज्ञ शेष, पुष्पमालाएं समिधा, सामग्री, काफूर कच्चा घूरे, केशर; कस्तूरी गुलाल, मेंहदी, हल्दी, आटा, दिया इत्यादि ॥

शांति पाठ

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शांतिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्ति रेधि ॥

यजु० । ३६ १७ ।

ओ३म् शांति ! शांति !! शांति !!!

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत् ॥

सबका भला करो भगवान्, सब पर दया करो भगवान् ।
सब पर कृपा करो भगवान्, सबका सब विधि हो कल्याण ॥

मुद्रक:—
भीमसेन विद्यालंकार
आर्य इलैक्ट्रिक प्रिंटिंग प्रेस, निकलसन रोड, अम्बाला छावनी ।